नीला मेम साहब

हुश्न तवस्सुम निहाँ

नीला मेम साहब

नीला मेम साहब का ल... म्... बा सा परिवार। तीन बेटे, चार बेटियाँ, एक अदद पति।

पति, जो नाम भर के हैं, घर में कभी-कभार दिखाई पड़ते हैं। अपनी इस छोटी सी रियासत पर नीला मेम साहब रानी विक्टोरिया की भाँति शासन-फर्मा हैं। वह पेशे से

अध्यापिका हैं और सारे दायित्व उनके हैं। एक सूई से ले कर घर की छत तक। जिसे वह पति को गरिया-गरिया के निबाहती आ रही हैं। चेहरे पे एक दंभ व अहंकार और दूसरों के लिए एक हिकारत का भाव निरंतर छाया रहता है। विशेषतः पति के लिए। जो एक-दो ट्यूशन कर लेने के कारण 'मास्टर साहब' के नाम से जाने जाते हैं। चूँकि पैसे से हाथ हमेशा खाली रहते हैं, तिस पर निखालिस बेकारी, ऐसे में वह घरमें हल्की-फुल्की फोर ट्वेनटी से भी बाज नहीं आते। किंतु अपने सरल व बचकाने स्वभाव के काण जल्दी ही पकड़े भी जाते हैं। पकड़नेवाली होती हैं खुद नीला मेम साहब। तब वह अपनी विजय-पताका लहराते हुए ये बताना नहीं भुलतीं - 'पुलिस वाले की बेटी हूँ... ' उनके इस अभिमानयुक्त वक्तव्य का आशय बेशक पुलिसिया डंडे से कम नहीं ही होता होगा। हाँ, सुघिया चीटिचों के समरूप अवश्य कहा जाना चाहिए। तब मास्टर साहब भोली और खिसियानी हँसी हँस देते हैं।

शानो-अभिमान में नीला मेम साहब खासी ख्याति अख्रजत कर चुकी हैं। क्या मजाल... नाक पर मक्खी भी बैठ जाए। उनके घर के आसपास का सारा मअशरा अनपढ़ और निचले तबके का है। खुद मास्टर साहब की पट्टीदारी भी। इस मामले में वह कीचड़ में कमल हैं। नीला मेम साहब को ये जाहिलानापन फूटी आँख नहीं भाता। यहाँ तक कि उनका यही आत्म गौरव उनकी निगाह में सबको हकीर बनाए रहता है। किसी बच्चे तक को वह घास नहीं डालतीं। इस नुकीली मानसिकता के मास्टर साहब जीवन भर शिकार रहे।

नीला मेम साहब का बड़बोलापन तब ढहने लगा जब शुरू में ही नासूर मानी जानीवाली चार-चार लड़कियों का ताबड़तोड़ जन्म हुआ। चौथी लड़की में वे बेतरह रोईं। अलबत्ता, जितनी बार उनके यहाँ लड़की पैदा हुई, पड़ोसी उतनी ही बार मन ही मन झूमे। कुछ बुजुर्ग औरतें ढाँढस बँधाने भी आईं। लेकिन वास्तव में वह नीला मेम साहब के मातमों की पराकाष्ठा महसूस करने आती थीं। और अपनी उम्मीदों को 'बर' आती देख वे मन ही मन पुलकती लौट जातीं। बेटियों की कतार से मास्टर साहब भी खुश न थे। उन्हें ये बेटियाँ अपनी खस्ताहाली पे उल्टा थप्पड़ मालूम होतीं। अब दुनिया उनकी समझ में ना आती। नौकरी के लिए कहाँ-कहाँ न हाथ-पाँव मारा, पर नहीं।

मास्टर साहब तो निरीह जीव थे ही, तिस पर उनके परिजन भी उनके घर के आसपास फटकने नहीं पाते, आखिर नीला मेम साहब अपने दम-खम पे घर जो चलाती थीं। यहाँ तक कि मास्टर साहब की कैंसर पीड़िता माँ जब कुछ दिन के लिए बेटे के पास चली आईं, तो नीला मेम साहब को नितांत नागवार गुजरा। वह हर समय नाक-मुँह में कपड़ा ठूँसे रहतीं। त्योरियाँ चढ़ी रहतीं। अब तूफान आए कि तब...। सारी रात

पति-पत्नी में किचकिच। संभवः इसी वितृष्णा से लोहित माँ किसी रोज सबकी अनुपस्थिति में घर छोड़कर किसी पट्टीदार के यहाँ आश्रय लेने चली गईं। फिर वहीं रहते आखिरी साँस ली। नीला मेम साहब के सिर से पहाड़ टला। अलबत्ता, मास्टर साहब एक बार फिर अवसाद में चले गए। कुंठाओं ने निचोड़ डाला। हालाँकि कुछ ही महीने बाद मेम साहब के टी.बी. ग्रस्त भाई साहब आ टपके। वहाँ रहते महीनों उनका इलाज चला। उन्हें देख-देख मास्टर साहब को अपनी कैंसर में घुलती माँ याद आती तो कलेजे पे छुरी चल जाती। किंतु उनके

खाली हाथ मजबूर थे। और वह विवश... जैसे बहुएँ दहेज में सोना-चांदी ले कर आती हैं, नीला मेम साहब अपने साथ कुबड़ी दायी सरीखी एक बहन ले कर आईं। जो अब एक तरह से घर की सर्वेसर्वा थीं। मेम साहब की अनुपस्थिति में वह मास्टर साहब पर नजर रखतीं। वह क्या खाते हैं, कितना खाते हैं, कहाँ जाते हैं, घर में उनका कोई परिजन तो नहीं आया, आया तो क्या कुछ उसे दिया-लिया गया, खिलाया-पिलाया गया। सारी सूचनाएँ

उनकी बंजर खोपड़ी में संगृहीत हो जातीं, और शाम को मेम साहब के आते ही खाली हो जातीं, जबकि नीला मेम साहब भरकर गोला बारूद...। ये बहन थीं, गुजराना बी।

हाँ तो, जब तक मास्टर साहब घर आ न जाते, वह फुफकारती रहतीं, और जैसे ही शिकार सामने आता, मेम साहब फट पड़तीं। सारी रात जम कर बवाल करतीं। जब मास्टर साहब और मेम साहब में मोर्चेबंदी हो रही होती, तो गुजराना भी चद्दर ढाँपे पड़ी मजे लेती रहतीं। चैन की नींद सोतीं। शायद इसका कारण उनका अविवाहित होना था कि उन्हें ये बिल्कुल बर्दाश्त न होता कि कोई दंपत्ति सुखी रहें, प्यार से रहें...। मिल कर बैठें।

खुदा न ख्वासता ऐसा कभी हो भी जाता तो उस दिन उनकी बेचैनी और तनाव का पारावार नहीं होता। जब तक कोई आग नहीं लगा देतीं, चैन से नहीं बैठतीं। अलबत्ता, जब मास्टर साहब को मेम साहब लगातार मात पर मात दे रही होतीं, या उठा-पटक शुरू होती तो छोटे बच्चे सोते से उठ कर घुरघुटिया लगाए बैठ जाते और माँ-पिता के चेहरे टुकुर-टुकुर ताकते रहते। बड़े बच्चे पढ़ रहे होते तो काफी-किताब झर्र-झर्र समेटते और पैर पटकते बिस्तर में जा कर गुड़मिड़या जाते।

मन ही मन कहते जाते... नर्क ऐसा ही होता होगा... नर्क ऐसा ही होता होगा...।

सोचते-सोचते वे सपनों के प्रवाह में बह जाते। मगर सपनों की मरुभूमि पर भी उन्हें साँप लोटते नजर आते। रेगिस्तानी झाड़ियाँ नजर आतीं। कभी-कभी तो चौंककर बैठ जाते।

एक बेटे की प्रतीक्षा में बेटियों का ढेर लगा लिया गया था। इस कारण भी इन दंपत्ति के चेहरों पर शाम की छाया लहराती रहती। जब से बेटियों के कद निकलने शुरू हुए, मास्टर साहब और मेम साहब में एक कुंठित सहम भरती चली गई। वे भीतर-भीतर एक अवसाद से गलते रहते। नीला मेम साहब को तो पँख लगे रहते, और मास्टर साहब थोड़ा-बहुत भाग्य को कोस कर जी, हल्का कर लेते। मगर इन्हीं मिली-जुली कु-संवेदनाओं का परिष्कृत रूप होता इन दंपतियों का अवसादित मल्ल-युद्ध।

ऐसे वातावरण के दुष्प्रभाव से बेटियाँ भी अछूती नहीं रहीं। वे अपनी उपेक्षाएँ और तिरस्कार सहतीं निरंतर भीतर ही भीतर चटखती चली गईं। बीचवाली लड़की कुछ ज्यादा ही संवेदनशील थी। यानी दूसरे नंबरवाली लड़की। उसने इन झमेलों से थोड़ा ऊपर उठ कर अपने आसपास एक घेरा बना लिया और एकांत रचने लगी। एकांत या सन्नाटे यूँ भी सदैव क्रिएटिव हुआ करते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे उदासियाँ खूबसूरत हुआ करती हैं। उसने कैनवास और कूची सँभाल ली। अब कैनवास पर संसार के सारे रंग उसे दिखाई पड़ते। और उन रंगों में उसके अंतर का सुख। सारी वैश्विक उथल-पुथल उसके भीतर... और वह स्वयं... सृष्टिमय...। मानो संसार बुनते-बुनते खुदा हो गई हो। वह भाव-विभोर सी रंगों में खेला करती। अलबत्ता, पहले नंबरवाली लड़की कुछ तनाव, कुछ बिखराव में रहती। वह सोच-सोच कर परेशान रहती कि आखिर ये क्या हो रहा है, कहाँ 'फाल्ट' है? और आउटपुट क्या है? जब माँ को डैडी इतने नापसंद हैं तो ब्याह क्यूँ किया उसने? तब भी तो वह बेकार (बेरोजगार) रहे होंगे। एक वजह समझ में आती, मास्टर साहब (डैडी) का फूल-पत्तों से लकदक शानदार व्यक्तित्व। नैन-नक्श तो बिल्कुल बॉलीवुड के नायकों सरीखे। रंग-ढंग भी वैसे ही। लड़कियाँ देखते ही हाथ-मुँह फोड़ लेती थी। मेम साहब भी इन्हीं गुम्मों कुमकुमों के जाल में फँस गईं। और अपने फँसने की सजा वह मास्टर साहब को मानसिक रूप से प्रताड़ित करके दिया करतीं। हालाँकि मास्टर साहब बिल्कुल सामाजिक व्यक्ति थे। बेहद हँसमुख, मिलनसार, सीधे-सरल स्वभाव के। और उतने ही सहनशील, धैर्यवान और विवेकी। कभी किसी ने उन्हें उदास नहीं देखा। यहाँ तक कि कभी अस्वस्थ भी नहीं देखा गया। कभी-कभार हल्की-फुल्की तबियत गिर जाती तो भीतर-ही-भीतर कोई दिव्य शक्ति शिफा भी दिला जाती। संभवतः यह उनकी दृढ़

इच्छाशक्ति का कमाल था। सहन-शक्ति की भी कोई कमी नहीं थी। वर्ना तीस-तीस साल तक कोई ऐसे धीरज से बैठा मुस्कराता रहे...। हिम्मत का काम है।

चार बेटियों पर जब पाँचवाँ बेटा जन्मा तो घर में चिराग जल गए। खुशियाँ मनाने के सारे उपाय किए गए। बेटियों का जो थोड़ा-बहुत मान था वो भी जाता रहा। तीसरे बेटे के आने पर बेटियाँ पूरी तरह खारिज कर दी गईं। ज्यादा कहें तो बेटियाँ 'आया' में तब्दील होती गईं। गुजराना बी की चढ़ आई।

खैर, परिवार बढ़ता गया, संसाधन घटते गए। कपड़ो पे पैबंद चिपकाए जाने लगे, भूखी आँतों को कुछ भी चुटर-पुटर खा कर बहला लिया जाता। ऐसे बदहवास वक्त में मास्टर साहब भी दहल जाते। वह रोजगार की तलाश में दूसरे-तीसरे शहरों में भी भागने लगे। कतु इससे भी कहाँ कुछ हाथ लगा?सिवाय इसके कि घर में जो एक-दो चीजें थीं, वो भी बिक बिका गई। बेटियों के कद जितनी तेजी से बढ़ रहे थे, उसकी चता में मेम साहब की उम्र उसी तेजी से घट रही थी। ऐसे में वह मास्टर साहब किसी निरीह चूजे की भाँति कोने तलाशते रहते। कभी गलती से वह सामने पड़ भी जाते तो उन्हें मेम साहब लताड़ डालतीं। मास्टर साहब पर खीझती, खौलती या झपटती रहतीं। उनकी दो-टूट सुन कर मास्टर साहब का हृदय टूक-टूक रह जाता। वह कुढ़ते,रीतते और निढाल हो जाते। मेम साहब को ये अकल कभी न आई कि हारे हुए व्यक्ति को क्रूर यातनाएँ या मानसिक प्रताड़नाओं की नहीं बल्कि नर्म सहानुभूतियों और नम्र संवेदनाओं की आवश्यकता होती है। नतीजा... ?

मास्टर साहब घर से विलुप्त होते चले गए। तब वह मुश्किल से पैंतीस के होते होंगे। पैंतीसवें साल में माँ भी चल बसीं। तब भी उनकी जेब में खाक उड़ती थी। कर्ज ले कर माँ का क्रिया-कर्म किया। किंतु माँ के क्रिया-कर्म के लिए ये जुगत उन्हें भीतर तक कचोट गई। माँ बच्चों को, उनके जीवन को सँवारने में सारा जीवन होम कर देती है, और उसी माँ के लिए दो गज कफन की खातिर भी 'जुगाड़' करना पड़े तो इससे विकट दुर्भाग्य और इससे गहरी त्रासदी किसी के लिए क्या हो सकती है?

जाने कहाँ से इतने बादल भर आये थे उनके जीवन में। और वही बादलपन आँखों

में सिक्त होता आया था। उनका ये अवसाद और विमूढ़ता अनायास गोधूलि में परिणत होने लगे। जैसे आकाश से देवताओं ने पुकार लिया हो। वह सहसा अलौकिक हो उठे। मृत्यु का पास वैसे भी कहीं न कहीं आध्यात्म का 'टच' देता है। वह भी धीरे-धीरे किसी अलौकिकता को महसूस करते हुए आध्यात्म में उतरते चले गए। यह क्षण-भंगुर संसार उन्हें नृशंस नजर आने लगा। अदृश्य शक्ति में विलीन हो जाने में

उन्हें सच्चे सुख की सी तृप्ति होने लगी। दैवीय आलोक उनकी आत्मा में भर गया। और वह इस दिव्य प्रकाश में आलोप हो गए।

धीरे-धीरे उनके आस-पास भीड़ बढ़ने लगी। भीड़ इतनी बढ़ी कि वह खुदा हो गए। भक्तों की कोई गिनती नहीं थी। उन्हें अलौकिक दुनिया का ज्ञान प्राप्त हो रहा था। और वह इसे दुनिया भर में बाँट रहे थे। भीतर एक अदृश्य शक्ति का संचार होता रहता। कोई दिव्य-शक्ति बल्कि दिव्य-दृष्टि उन्हें प्राप्त हो रही थी। पूरे के पूरे संत-महात्मा। वाणी में ऐसा चमत्कार कि मुर्दा भी जी उठे। स्पर्श में वो जादू कि आदमी ढुलकता हुआ आए और उछलता हुआ जाए। उनके पास हर वक्त मजमा लगा रहता। अपेक्षाकृत वह खूब बोलते क्योंकि उन्हें पता था कि आज का आदमी भूख और कर्ज से तो पीड़ित है ही, उससे कहीं अधिक वह उपेक्षाओं, तिरस्कारों, नफरतों और विवशताओं से पीड़ित है। जिससे वह कुंठा, हीनता और आत्मिक गलन का शिकार होता गया है। देह कैसी भी हो आत्मा छटपटाती है।

उसे प्रेम, सहानुभूति, दृढ़ इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास की आवश्यकता है। जिसका उसे नितांत अभाव है और वह संबंधों की मरुभूमि पर भटक रहा है। ऐसे लोगों के लिए मास्टर साहब की बातें संजीवनी होती। ब्रह्म-सूक्ति होती। किंतु इस मोहमाया, मायावी संसार, अपनत्व और सारे भौतिक उपादानों से ऊपर उठ कर तटस्थ रह पाने के लिए स्वयं को इंद्रियाग्नि में जला-तपा कर कुंदन करना पड़ता है। मास्टर साहब यहीं चूक गए। आम जन की मसीहायी करते-करते वह अपनी ही किसी भक्तिन के बाहुपाश में बँधते चले गए...। और ऐसे बँधे कि बस्स...।

इसका एक कारण यह भी था कि लोगों ने उन्हें उठा कर उस जगह पर बैठा दिया था जहाँ से प्रेम, अपनत्व, संवेदनाएँ सब मिथ्या लगनी चाहिए थीं। किंतु उनकी चिरप्यासी आत्मा स्वयं को इस कदर परिष्कृत न कर सकी। मन में अनंत काल से बनी नर्म-सान्निध्य की लालसा यहाँ समर्पण कर बैठी। भक्तों को अपने खुदा से ऐसी आशा नहीं थी। वे निराश हो कर लौट गए। उन्हें शिकायत थी कि उनके देवता ने उनका दिल तोड़ा। वे तो सोचते थे खुदा के भीतर दिल ही नहीं होता। न संवेदनाएँ, न इच्छाएँ, न ख्वाहिश... न प्यास... न दर्द का अहसास... न सुख की अनुभूति... अगर से सब भावनाएँ, अनुभूतियाँ हों ही तो... तो वो खुदा... खुदा ही कैसा... ?

इंसान जब जमीन पर है तब तक ही ठीक-ठाक...। भूमि से थोड़ा उठते ही वह आकाश हो जाता है। लेकिन तब ये आकाशीय उत्कर्ष धराशायी हो जाता जब वह थोड़ा सा अपना मन रख और बादलों को छू कर उनका ठंडापन महसूस कर पाने की या भीतर

समोह लेने की ख्वाहिश कर बैठे। उसकी इस अवस्था को जमीन कभी मान्यता नहीं देती। तब उसकी स्थित मात्रा एक घिसे-पिटे सिक्के की सी रह जाती है। जिस पर खोटे होने की चिट चस्पा कर दी जाती। जो अहम हो कर भी महत्वहीन हो जाता है।... हमेशा के लिए...।

अलबत्ता, नीला मेम साहब दोनों हाथ फैलाए आज भी आसमान तकती हैं। हैरत है, उन्हें पता ही न चला कब उस पँछी पर उनकी पकड़ ढीली पड़ गई और आकाश लील गया।